*'आह्वान' के पाठकों के लिए हम इस अंक में विश्वप्रसिद्ध उपन्यास 'अग्निदीक्षा' के यशस्वी लेखक **निकोलाई ओस्त्रोव्स्की** के बारे में से.त्रेगुब का एक लेख और ओस्त्रोव्स्की का एक अधूरा साक्षात्कार प्रकाशित कर रहे हैं।*

ओस्त्रोव्स्की बन्द अध्ययन कक्षों का नाजुक जीव नहीं, बल्कि एक क्रान्तियोद्धा था। भयंकर गरीबी और अभाव से लड़ते हुए किशोरावस्था में ही वह क्रान्ति ज्वार में शामिल हो गया। तमाम शोषितों की मुक्ति और समाजवाद की रक्षा के युद्ध में उसने अपना जीवन होम कर दिया। युवावस्था में ही जब शरीर ने जवाब दे दिया तो उसने लेखनी को हथियार बनाया और आखिरी साँस तक क्रान्तिकारी साहित्य लिखता रहा।

ओस्त्रोव्स्की का छोटा-सा जीवन और थोड़ी-सी रचनाएँ क्षितिज पर जलती मशाल की तरह हैं जो आज भी एक शोषणमुक्त न्यायपूर्ण समाज के सपने देखने वाले और बेहतर भविष्य के लिए संघर्ष को तत्पर दुनिया भर के युवाओं को प्रेरित करती रहती हैं।

-सम्पादक

निकोलाई ओस्त्रोव्स्की

• से. त्रेगुब

कितनी उज्जवल कीर्ति है जिसे लेखक निकोलाई ओस्त्रोव्स्की अपने पीछे छोड़ गया है। आज उसके उपन्यास 'अग्नि-दीक्षा' का तरुण नायक, काली-काली आँखोंवाला पावेल कोर्चागिन, संसार भर के, हर देश और जाति के सहस्रों स्त्री-पुरुषों और बच्चों के लिए जीवन भर का साथी बन गया है, ऐसा साथी जो अपने दृढ़-संकल्प और साहस से, अपने अदम्य जीवन-प्रेम से, कठिनाइयों से जूझनेवाली अपनी दृढ़ता से, एक मिसाल क़ायम कर उन्हें अनुप्राणित करता रहता है।

ओस्त्रोव्स्की ने एक जगह लिखा है: ''वह मनुष्य बड़ा भाग्यशाली है जिसकी रचनाएँ उसकी मृत्यु के बाद भी मानव-जाति की सेवा करती रहती हैं।'' जैसा उसका जीवन था और जो काम उसने कर दिखाया, उससे स्वयं ही उसकी वह कामना पूरी हो गयी।

क्षण भर के लिए कल्पना कीजिये कि समय ने अपने पन्ने पीछे की ओर उलट दिये हैं – कि ओस्त्रोव्स्की अभी जीवित है। 1935 का वर्ष और दिसम्बर का महीना। 'अग्नि-दीक्षा' छप चुकी है और सोवियत जनता ने अपने एक योग्य और देशभक्त पुत्र के निःस्वार्थ श्रम की सराहना की है। ओस्त्रोव्स्की को लेनिन पदक से विभूषित किया गया है। और अब वह सोची से मास्को आया है ताकि अपनी दूसरी क़िताब 'तूफ़ान के जाये' पर अपना काम जारी रख सके। आप 40, गोर्की स्ट्रीट में उसके कमरों मे उससे मिलने जाते है।

बड़ी आशा और उत्साह से आप चौड़ी सीढ़ियों पर चढ़ते हुए दूसरी मंजिल पर पहुँचते हैं, फिर ड्योढ़ी लाँघकर घण्टी बजाते हैं। दरवाजा खुलता है। इसके बाद एक और दरवाजा खुलता है और आप अपने को उसके कमरे में खड़ा पाते हैं।

वह सामने लेटा हुआ है – एक कृशकाय व्यक्ति, कमर तक कम्बल ओढ़े हुए। उसका क्षीण किन्तु अनुभूतिशील चेहरा – एक चिन्तनशील तथा एकाग्र मानसिक प्रयास करने वाले व्यक्ति का चेहरा – किसी अन्तःप्रेरणा से चमक रहा है। उसके चेहरे पर उसके आन्तरिक विचार, अपनी प्रत्येक गतिविधि और परिवर्तन में उसी तरह झलक रहे हैं जैसे शीशे में प्रतिबिम्ब। ऊँचा, उन्नत ललाट, दाहिनी भौंह के ऊपर एक छोटा-सा गड्ढ़ा, कई बरस पहले के एक जख्म का निशान। गहरी धंसी हुई आँखें बिल्कुल खुली हैं, मानों अब भी देख रही हों। वह खाकी रंग का फौजी कोट पहने हुए है। लेनिन पदक छाती पर चमक रहा है।

कमरे में कुछ-कुछ अँधेरा है, बड़ी खिड़की पर मोटे-मोटे पर्दे टँगे हुए हैं ताकि सड़क पर की आवाजें अन्दर न आ सकें।

बायीं ओर दीवार पर, पलंग के ऊपर, लेनिन की तस्वीर टँगी है, दायीं ओर कोने में एक मेज है। कमरे में एक चमड़े का सोफा है, पियानो, किताबों की अलमारी, तथा हैनरी बारबूस की मूर्ति।

पर अब आपके पास इधर-उधर देखने का वक़्त नहीं है। आपका मेजबान, जिसे आपके बारे में पहले से बतला दिया गया है, आपसे बातें करने लगा है। उसकी आवाज में यौवन का ओज है। वह आपको अपने पास बैठने को कहता है, और बड़ी कठिनाई से केवल अपने बायें हाथ की हथेली हिला पाता है। अब उसके शरीर के सभी अवयवों में से केवल हाथों में ही कुछ थोड़ी गति रह गयी है। अभिवादन में वह आपका हाथ दबाता है, और जितनी देर तक आप उसके पास रहेंगे, वह सारा वक़्त आपका हाथ अपने हाथ में लिये रहेगा।

आप सोचते हैं कि शायद आपके हाथ को इस तरह पकड़ने से और अपनी चेतन उँगलियों द्वारा उसे दबाते रहने से, उसकी मानसिक दृष्टि के आगे आपका चेहरा स्पष्ट हो रहा है और वह समझ रहा है कि किस ढंग का आदमी उससे मिलने आया है।

''जब मैं आपका हाथ अपने हाथ में लेता हूँ,'' वह कहता है, मानों आपके अनुमान की पुष्टि कर रहा हो, ''तो मैं आपकी बात को ज्यादा अच्छी तरह समझ पाता हूँ, आप मेरे सामने अध्कि सजीव हो उठते हैं। इससे मुझे बड़ी सहायता मिलती है।''

जब वार्तालाप बढ़ निकलता है तो आप भूलने लगते हैं कि जो

आदमी आपके सामने लेटा हुआ है वह अन्ध भी है और रोगग्रस्त भी।

''जो प्रभाव मुझ पर ओस्त्रोव्स्की के व्यक्तित्व का पड़ा,'' उसके एक मित्र माते जाल्का ने लिखा है, ''उसमें परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं, परन्तु मुख्यतया मैं उससे मिलकर प्रोत्साहित और प्रसन्न हुआ। ये सब बातें कि वह सीधा पीठ के बल लेटा है, खाट के साथ जुड़ा हुआ है, अन्धा है इत्यादि – ये केवल बाहर की बातें रह जाती हैं। भीतरी सत्य यह है कि उसमें बल है, साहस है, वह एक वीर योद्धा है। उसमें अब भी लाल फ़ौज के एक सिपाही की आन है। वह समझता है कि वह अब भी सेना की पंक्ति में आगे बढ़ रहा है। और वह निःसन्देह सेना की पंक्ति में है, सबसे आगे। उसकी शारीरिक स्थिति बिल्कुल गौण, प्रासंगिक-सी बात मालूम होती है : इसके कारण उसे दुख है, पर वह स्थायी नहीं, अजेय नहीं, किसी तरह भी निर्णायक नहीं।''

यह बिल्कुल सच है! उसके पास बैठते हुए, उसकी उत्साह भरी बातों को सुनते हुए, उसके विचारों की तीव्र उत्कंठित उड़ान को अनुभव करते हुए, आप भूल जाते हैं कि आप एक बीमार के पास बैठे हैं। ''जब मैं अपनी आँखें बन्द करता हूँ ...'' वह कहता है – और आपको यह ख़्याल तक नहीं रहता कि उसकी आँखें पिछले कई बरसों से अन्धी हैं। वह अपने ''नज़ले'' का जिक्र करता है –और आप समझते हैं कि उसे केवल जुकाम की तकलीफ है। वह कहता है–''मैं पढ़ता हूँ,'' ''मैं लिखता हूँ,'' ''मैं जाने की सोच रहा हूँ,'' ''मुझे अभिलेख-संग्रहालय में इसकी खोज करनी होगी,'' ''मैं कांग्रेस में बोलने के लिए अपना भाषण तैयार कर रहा हूँ''। आँखों से अन्धा है पर उसकी नज़र कई आँखोंवालों की नज़र से तेज है। सारा वक़्त बदन में दर्द रहता है, बीमारी ऐसी है जिसका कोई इलाज नहीं। तिसपर भी उससे इतना ओज और मानवप्रेम विकीर्ण होता है, कि आपका मन गर्व से भर उठता है। अनुकम्पा से नहीं, कदापि नहीं! और आप अपने प्रमाद का ख़्याल करके लज्जा से गड़ जाते हैं कि किस तरह कई काम जो आज या कल या परसों किये जा सकते थे, अधूरे पड़े रह गये।

''बीमारी इन्सान का सबसे बड़ा शत्रु नहीं,'' वह कह रहा है, ''नेत्रहीन होना बहुत भयानक है, पर इस पर भी काबू पाया जा सकता है। पर एक चीज़ है जो सबसे अधिक भयानक हैः वह है सुस्ती। केवल सुस्ती। जब मनुष्य के दिल में काम करने का शौक नहीं, आन्तरिक आग्रह नहीं, जब रात को सोते वक़्त वह इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकताः 'आज के दिन मैंने कौन सा काम पूरा किया?' तो यह बहुत ही चिन्ताजनक स्थिति है। ख़तरा इसी में है। उस समय चाहिए कि उसके मित्र उसे मिलकर समझायें और उसके बचाव के साध्न ढूँढें–क्योंकि उस पर विपत्ति आने वाली है। इसके विपरीत, यदि मनुष्य काम के प्रति अपना उत्साह बनाये रखे, और काम करता जाय, तो कुछ भी हो, रुकावटों और कठिनाइयों के बावजूद, वह मनुष्य एक सामान्य क्रियाशील प्राणी बना रहता है। उसके बारे में कोई चिन्ता नहीं होती।''

वह कहे जा रहा है, और धीरे-धीरे अधिकाधिक खुलने लगता है :

''मैं तुम्हें भेद की बात बताऊँ : मनुष्य कई बार बड़ा तुच्छ और विनाशी जीव हो उठता है। वही आदमी वास्तव में मनुष्य कहा जा सकता है जिसके सामने कोई ऊँचा आदर्श हो, जीवन का कोई ध्येय हो। तब उसका जीवन एकांगी नहीं रहता – तब वह पेट के लिए या मेदे के लिए या शरीर के किसी अंग-विशेष के लिए नहीं जीता। उसके जीवन में एक पूर्णता आने लगती है। और इसी से मनुष्य और अन्य जीवों के भेद का पता चलता है। इसी में मनुष्य की शक्ति निहित है। एक ऐसा आदर्श है जो न केवल व्यक्तियों को बल्कि राष्ट्रों तक को सच्चे वीरों में परिणत कर सकता है। वह है कम्युनिज़्म का, जनता के सुख के लिए संघर्षरत रहने का आदर्श। मुझे इस बात का गर्व है कि मैं बोल्शेविक हूँ, कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य हूँ। और इसके नाते मैं एक मनुष्य हूँ, मैं उस तरह जी सकता हूँ, जैसे कि एक मनुष्य को जीना चाहिए। मैं यह भी कह सकता हूँ, दिखावे के तौर पर नहीं, बल्कि सच्चे दिल से, कि मैं सुखी प्राणी हूँ।''

सच है, ओस्त्रोव्स्की सुखी था। उसके कहने और करने में कोई अन्तर न था। जितना ही अधिक कोई उसे समझ पाता था, उतना ही अधिक वह उसके जीवन के इस सत्य से प्रभावित हो उठता था।

निकोलाई ओस्त्रोव्स्की का जन्म 29 सितम्बर 1904 में हुआ। पिता एक शराब के कारखाने में काम करते थे, पर आमदनी इतनी न थी कि परिवार का पालन कर सकें, इसलिए माँ को लोगों के घरों में रसोई बनाने का काम क़रना पड़ता था। जब निकोलाई 12 बरस का हुआ तो वह भी रसोइये का काम करने लगा। बाद में वह एक भण्डार का मज़दूर और फिर इंजन की भट्ठी में कोयला झोंकने वाले एक स्टोकर का सहायक बन गया। और उसके बाद वह किसी बिजली-मिस्त्री की शागिर्दी करने लगा। 1919 में वह युवा कम्युनिस्ट लीग (कोम्सोमोल) में शामिल हो गया, और स्वेच्छा से लड़ाई पर चला गया। उसी वक्त से उसका जीवन कम्युनिस्ट पार्टी के महान कार्य के साथ एक अटूट सम्बन्ध में बँध गया।

इस तरह 15 साल की उम्र में ओस्त्रोव्स्की गृह-युद्ध में कोतोव्स्की और बुद्योन्नी के नेतृत्व में लड़ा। फिर शान्तिपूर्ण निर्माण-कार्य के समय उसने बड़ी वीरता से काम किया–रेलवे वर्कशाप बनाने, रेलवे लाइनें लगाने, नदी में लकड़ी के कुन्दे बहाने इत्यादि में। फिर युवा कम्युनिस्ट लीग के एक कार्यकर्ता की हैसियत से, पहले बरेज्दोव और फिर इज़्यस्लाव्ल जिलों में अपने समूचे जन्मजात उत्साह के साथ काम में जुटा रहा। ''जो जलता नहीं, वह धुएँ में अपने आपको नष्ट कर देता है,'' उसने एक जगह लिखा है, ''यह एक अमर सत्य है। जीवन की ज्वलन्त शिखा, मैं तेरा अभिवादन करता हूँ!'' और जो भी काम पार्टी और लीग ने उसके जिम्मे सौंपा, वह उसे अपने यौवन की समूची शक्ति और उत्साह के साथ करता रहा।

1924 के अन्तिम दिनों में ओस्त्रोव्स्की सख़्त बीमार पड़ गया। रोग रीढ़ की हड्डी में था। अपने छोटे-से जीवन में उसने हर तरह की तकलीफें झेली थीं–बचपन में ग़रीबी, फिर युद्ध के घाव, युद्ध के बाद कड़ा परिश्रम जिसमें न आराम था न नींद–ये सब मिलकर जैसे अब उसके स्वास्थ्य को कुचलने लगीं।

ओस्त्रोव्स्की जो सदा क्रियात्मक संघर्ष

में भाग लेता रहा था, और जीवन के निर्माण में संलग्न रहा था, अब पिछड़ गया और सबसे पीछे कहीं ''आखिरी सैन्य पंक्ति'' में रह गया। उस समय सोवियत भूमि के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक निर्माण-कार्य के प्रति अदम्य उत्साह की लहर दौड़ रही थी। यह वे दिन थे जब देश एक ही लम्बे डग में आगे बढ़ जाने के लिए अपनी पहली पंचवर्षीय योजना की तैयारी कर रहा था। उद्योग और कृषि की फिर से व्यवस्था की जा रही थी। एक सांस्कृतिक क्रान्ति देश को उद्वेलित किये हुए थी। ऐसे निर्माण-कार्य में, जिसकी तुलना इतिहास में कहीं नहीं मिलती, युवाजन इकट्ठे हो रहे थे, ओस्त्रोव्स्की की ही पीढ़ी के युवक इस कड़े किन्तु सुखद परिश्रम में जुटे हुए थे।

इसलिए बाध्य होकर निष्क्रिय पड़े रहने के कारण वह और भी दुखी था।

पर देश ने उसकी सहायता की। इलाज के लिए उसे देश के सर्वोत्कृष्ट अस्पतालों और विश्रामगृहों में भेजा गयाः खारकोव, येवपातोरिया, स्लाव्यान्स्क, मास्को, सोची इत्यादि में वह रहा। और स्वयं उसने बरबस कोशिश की कि वह किसी भाँति फिर काम करने लग जाय, सक्रिय सैनिकों की पंक्ति में खड़ा हो पाये।

''अस्पताल की चहारदीवारी के बाहर जीवन की प्रत्येक गतिविधि में उसकी गहरी रुचि थी। वह खूब पढ़ता, और अपने बीमार साथियों के साथ अख़बार पढ़ने, राजनीतिक विषयों तथा तात्कालिक घटनाओं पर बहस करने की व्यवस्था करता। वह एक दृढ़ाग्रही कम्युनिस्ट होने के नाते अपना लक्ष्य जानता था। वह जानता था कि उसे किस चीज़ के लिए लड़ना है ... उसके प्रखर व्यक्तित्व के सामने उसकी बीमारी मानो सिकुड़कर तुच्छ हो जाती थी, अपना अस्तित्व खो बैठती थी।'' यह विचार ओस्त्रोव्स्की के बारे में नर्स आन्ना पाव्लोवना दवीदोवा का था जो ख़ारकोव के चिकित्सा-प्राविधिक अनुसन्धान गृह में काम करती थी। और यही विचार ओस्त्रोव्स्की के बारे में उन सभी लोगों का था जो उन दिनों उसके सम्पर्क में आये–छोटे से छोटे युवा कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों से लेकर, वयस्क कम्युनिस्टों तक। यही विचार उसके मित्रों–इन्नोकेन्ती पाव्लोविच फ़ेदेनेव, ख़िसान्फ पाव्लोविच चेर्नोकोजोव, अलेक्सान्द्रा अलेक्सेयेवना जिगिर्योवा–का भी था जिन्होंने मुसीबत के दिनों में उसकी सहायता की थी।

''एक लक्ष्य है जिसके लिए मुझे जीना है–कहीं पर मेरी जरूरत है,''–इस विचार की प्रेरणा ने उसे सहने की क्षमता दी, अपने शारीरिक कष्टों पर क़ाबू पाने की शक्ति दी।

इस काल में ओस्त्रोव्स्की की मानसिक दृढ़ता, घोर आत्मनियंत्रण, दृढ़ संकल्प और एकलक्ष्यता उभरकर सामने आ गये। जितनी ही उसकी कठिनाइयाँ बढ़ती गयीं उतनी ही टदृढ़ता से वह अपने उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए संघर्षरत रहा, कि वह फिर किसी तरह काम करनेवालों की पंक्ति में खड़ा हो सके।

तदनुरूप ओस्त्रोव्स्की मास्को के स्वेर्दलोव कम्युनिस्ट विश्वविद्यालय का छात्र बन गया और पत्रव्यवहार द्वारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के ग्रन्थों का अध्ययन करने लगा।

एक छोटे-से क्रिस्टल रेडियो-सेट से उसे बड़ी सहायता मिली। जो विषय वह पढ़ रहा था, उन पर बाक़ायदा रेडियो पर लेक्चर हुआ करते थे, और वह इन्हें सुनने में कभी न चूकता था।

एक स्थानीय पुस्तकालय से उसके साथी उसे पुस्तकें, अखबार और पत्रिकाएँ लाकर देते रहते।

दमीत्री पाव्लोविच ख़ोरुजेन्को, जो उन दिनों नावोरोसीस्क बन्दरगाह पर पुस्तकालय का अध्यक्ष था, कहता है कि ''मैं उसे ढेर की ढेर किताबें लाकर देता, किताबों के बण्डल रस्सियों से बाँध-बाँधकर उसके पास ले जाता। वह विलक्षण आदमी कुछ ही दिनों में सब की सब पढ़ डालता। पहले पहल मैं हर एक किताब का नाम इत्यादि इसकी पाठक-पुस्तिका में नोट करा देता। पर मुझे गोंद के साथ बार-बार नये पन्ने जोड़ने पड़ते जिससे वह मोटी होने लगी। आखिर पुस्तकालय के सभी नियमों और उपनियमों का उल्लंघन करते हुए, मैं केवल पुस्तकों की संख्या दर्ज़ करने लगा, साथ में तफ़सील कुछ न देता। मैं दुकान से किताबें लेकर सीधे इसके पास ले जाता, उन्हें रजिस्टर में चढ़ाने से भी पहले, ताकि वह अपने मतलब की किताबें खुद चुन ले।''

ओस्त्रोव्स्की का दृष्टिकोण जैसा जनता के प्रति था वैसा ही पुस्तकों के प्रति भी था –एक तन्मय, क्रियाशील सैनिक का दृष्टिकोण।

मक्सिम गोर्की के प्रति वह विशेषतया आकृष्ट हुआ।

''कैसी विलक्षण रचना है!'' उसने गोर्की के गीत 'तूफ़ानी पक्षी' के बारे में कहा था। ''यही तो उन्मत्त यौवन का गीत है, लक्ष्यप्राप्ति के लिए आत्मविश्वास से भरपूर, सौंदर्यपूर्ण जीवन और स्वच्छन्दता के उद्दीप्त स्वप्नों को साकार करने की महत्वाकांक्षा लिये हुए! वह एक बारूद का गोला है जो एक विशालकाय सैनिक ने अपनी बलवती बाँह से प्रगति और संस्कृति के शत्रुओं के शिविर में फेंका है। हाँ, गोर्की सर्वोत्कृष्ट लेखक है, ऐसा गीत पहले कभी किसी ने नहीं लिखा।''

पुश्किन, लेर्मोन्तोव, गोगोल, नेक्रोसोव, तोलस्तोय, चेखोव, कोरोलेंको, सेरफ़िमोविच, फ़ूर्मानोव, शोलोख़ोव, फ़देयेव, नोविकोव प्रिबोई, फ़ेदिन, बालज़ाक, विक्टोर ह्यूगो, जोला, जैक लन्डन, ड्राइजर, केलरमन, बारबूस – इनकी और अन्य कितने ही लेखेकों की रचनाएँ इस काल में ओस्त्रोव्स्की ने बार-बार पढ़ीं।

विशेष तौर पर उसने गृह-युद्ध सम्बन्धी साहित्य को–उपन्यास, लेख, दस्तावेज, संस्मरण–संग्रहबद्ध रूप में हों या पत्रिकाओं में छोटे-छोटे लेखों के रूप में–सबको बड़े ध्यान से पढ़ा।

उसने अपनी दिनचर्या निश्चित कर रखी थी, इतना समय राजनीतिक साहित्य को, इतना उपन्यासों को, इतना चिट्ठी-पत्री को, इत्यादि। पहले इस कार्यक्रम में सैर भी शामिल थी, पर बाद में सैर छोड़नी पड़ी, क्योंकि शरीर बरदाश्त न कर सकता था। कार्यक्रम में, ''वक़्त जो जाया हुआ'' नामक एक शीर्षक भी रहता जिसके नीचे नाश्ता, भोजन, शाम का भोजन, आराम इत्यादि पर खर्च हुए वक्त का विवरण रहता।

वह जीवन के साथ केवल ''चिपटे रहना'' नहीं चाहता था। जैसा कि ओस्त्रोव्स्की ने बाद में कहा, उसने ''अपने अन्तरतम में अपने जीवन-मार्ग की रूपरेखा स्वयं बना ली थी''। वह अपना लक्ष्य जानता था। और उसने अपना स्थान क्रियाशील लोगों की पंक्ति में बना लिया था।

जाहिर है कि उसने इसी काल में लेखनी हाथ में लेने का संकल्प किया।

1927 में नोवोरोसीस्क प्योत्र निकोलायेविच नोविकोव के नाम अपने एक पत्र में उसने कहा : "मैं कुछ लिखने की सोच रहा हूँ–एक तरह की 'ऐतिहासिक-गीतमय- वीरगाथा'। सचमुच–मजाक नहीं करता, मैं बड़ी गंभीरता से लिखने की सोच रहा हूँ। मैं केवल यह नहीं जानता कि उसका नतीजा क्या निकलेगा।"

उस समय वह गृह-युद्ध के वीरों–कोतोव्स्की और उसके सैन्यदल–के बारे में सोच रहा था। उसने 1927 की शरद में लिखना शुरू किया और 1928 के शुरू में उसे समाप्त कर दिया।

अब उसकी दिनचर्या में 'लिखने' को भी नियमित रूप से समय मिलने लगा और पहली दिलचस्पियाँ पीछे हटती गयीं। नाश्ते के फौरन ही बाद, चुपके से वह अपने सिरहाने के नीचे एक मोटी-सी कापी निकाल लेता और लिखना शुरू कर देता। कई बार वह इसमें इतना लीन हो जाता कि उसे काम से छुड़ाकर भोजन कराना कठिन हो जाता। वह खीज उठता और कहता कि लोग उसे इस "बेमतलब भोजन" के लिए इतना तंग क्यों करते हैं; या वचन देकर कहता कि कुछ ही दिनों में–ज्यों ही वह काम से निबट लेगा–वह सब के सब भोजन एक साथ खा लेगा।

जब कहानी लिखी गयी तो उसे उसने ओदेसा में अपने फराने सैनिक साथियों के पास भेजा। कोई दो हफ्ते बाद उनका जवाब आया–एक ही संयुक्त चिट्ठी के रूप में, कि रचना सामान्यतया अच्छी है, केवल कहीं-कहीं विवरणों में सुधार की ज़रूरत है। ओस्त्रोव्स्की की खुशी का ठिकाना न था।

पर जब पाण्डुलिपि को ओदेसा से वापिस भेजा गया तो वह कहीं रास्ते में खो गयी, उसकी कोई दूसरी नकल मौजूद नहीं थी। कहानी का कहीं पता न चला। "बहुत देर के बाद," ओस्त्रोव्स्की की पत्नी लिखती है, "निकोलाई इस सदमे को भूल पाया।" वह बहुत दुखी हुआ पर जल्दी उसने फिर अपने आपको सम्भाल लिया। और इसके बाद कभी इस गहरे सदमे की चर्चा नहीं की, न कभी चिट्ठियों में, न अपने घरवालों से या मित्रों के साथ बातचीत में।

अपने पहले साहित्यिक प्रयास के प्रति साथियों के इस प्रोत्साहन से ओस्त्रोव्स्की का अपनी योग्यता में विश्वास बढ़ गया। उसने अपनी पढ़ाई फिर शुरू कर दी, ताकि अपने इस नये कार्यक्षेत्र के नियमों में कुशलता प्राप्त कर सके। और साथ ही मन में वह एक नयी फस्तक की रूपरेखा आँकने लगा।

ऐसे समय में जब जान पड़ता कि वह ज्यादा दिन नहीं जियेगा, जब शरीर की निरुद्धता के साथ-साथ दृष्टिहीनता आने लगी थी, और सब कुछ खत्म होता जान पड़ता था, ओस्त्रोव्स्की ने सोची से प्योत्र निकोलायेविच नोविकोव को एक पत्र में लिखा (11 सितम्बर, 1930)–

"मैंने अपने जीवन को उपयोगी बनाने का एक और उपाय सोचा है, और केवल इसी से जीवन को सार्थकता मिल सकती है। मेरी यह योजना बड़ी कठिन है, सरल बिल्कुल नहीं। यदि मैं इसे क्रियान्वित कर पाया तो इस बारे में तुम्हें और लिखूँगा। मेरे जीवन-मार्ग में कुछ भी अनिश्चित नहीं। मेरे जीवन की गतिविधि सदा सीधी होती है, इसमें कोई घुमाव या हेर-फेर नहीं होते। मैं जानता हूँ कि मैं कहाँ खड़ा हूँ और मेरे लिए उद्विग्न होने का कोई कारण नहीं। मैं ऐसे लोगों से स्वभावतया घृणा करता हूँ और उन्हें निकृष्ट समझता हूँ जो जीवन के निर्मम आघात पड़ने पर रोने-बिलखने लगते हैं।"

"मैं आज बेशक अपनी खाट से जा लगा हूँ। पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं बीमार हूँ। यह कहना बिल्कुल गलत होगा, मूढ़ प्रलाप होगा। मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ। क्या हुआ जो मेरी टाँगें काम नहीं करतीं और मैं कुछ देख नहीं सकता। यह तो बिल्कुल एक भ्रम है–तुच्छ और पैशाचिक परिहास!"

कितनी विलक्षण, कैसी अद्भुत संकल्प-दृढ़ता है! मृत्यु को चुनौती देनेवाली! और ऐसे समय में जब जान पड़ता था कि मौत किसी वक़्त भी आकर उसे दबोच सकती है। उसका शरीर धीरे-धीरे नष्ट हो रहा था और डाक्टर बेबस थे। वह जानता था कि वह कभी भी बिस्तर पर से अब नहीं उठ पायेगा, न कुछ देख सकेगा, न चल-फिर सकेगा। तो इससे क्या हुआ?

उसने अपना रास्ता ढूँढ निकाला था। वह अपनी रचना के पन्नों द्वारा जीवन में क्रियाशील रहेगा!

वह जानता था, बहुत पहले से जानता था कि उसे क्या लिखना है। वह नयी पीढ़ी के लोगों के लिए एक पुस्तक होगी: क्रान्ति के एक सेनानी की कहानी, जिसे किसी तरह के भी कष्ट और कठिनाइयाँ हतोत्साह नहीं कर पातीं। यह उसकी अपनी कहानी होगी, जो वह युवकों के लिए लिखेगा, इस आशा से कि "वह मज़दूर लड़का जिसे मैं जानता था" –पावेल कोर्चागिन–अपने पाठकों को उस संघर्ष की प्रेरणा दे पाये जिस संघर्ष में उसने स्वयं भाग लिया था।

उसकी पाण्डुलिपियों को देखते हुए जो अब ओस्त्रोव्स्की स्मारक-संग्रहालयों में रखी हैं (मास्को, सोची तथा शेपेतोव्का में) यह साफ पता चल जाता है कि इन किताबों पर उसे कितनी कड़ी मेहनत करनी पड़ी होगी।

पहले कोई भी उसकी सहायता करनेवाला नहीं था। उसकी पत्नी दिन भर व्यस्त रहती, अपने काम में और सार्वजनिक कार्यों में, और शाम के वक्त वह सदा थकी होती। वह वहाँ लेटे-लेटे, अपनी कठोर अकड़ी हई उँगलियों में पेंसिल को जैसे-तैसे पकड़कर लिख रहा होता – या यों कहिये कि एक के बाद दूसरे शब्द की, बड़ी कठिनाई से रेखाएँ खींच रहा होता। कई बार एक रेखा पिछली रेखा पर चढ़ जाती और दोनों विकृत हो जातीं।

फिर एक यन्त्र बनाया गया जो सहायक सिद्ध हुआ। एक सादा गत्ते का दोहरा टुकड़ा लिया गया, जिसके ऊपरवाले भाग में आठ मिलीमीटर चौड़ी सीधी लाइनें काट ली गयीं। इनके अन्दर चलती हुई पेंसिल टेढ़ी पंक्ति में न लिख सकती थी और इस तरह प्रत्येक पंक्ति सीधी और स्पष्ट लिखी जाती।

इस काल में ओस्त्रोव्स्की अधिकतर रात के वक्त काम किया करता, जब सब लोग सो रहे होते। सोने से पहले उसकी पत्नी या माँ 25-30 काग़ज और बहुत-सी पेंसिलें छीलकर उसके पास रख जाती। जब सुबह होती, तो सब काग़ज लिखे हुए मिलते। दिन के वक़्त मित्र और परिवार के लोग उन्हें बड़े ध्यान से नक़ल कर लेते।

"क्रियात्मकता की ज्वलन्त शिखा" –इस नाम से रोमां रोलां ने ओस्त्रोव्स्की को पुकारा था। इस दीप्त शिखा को बुझाने के लिए जितनी ही तेज और विषम आंधियाँ चलतीं, उतनी ही इसकी लौ और तेज हो जाती।

ओस्त्रोव्स्की ने 'अग्निदीक्षा' को दो भागों में लिखा। यह उपन्यास उसके अपने जीवन पर आधारित था। उसे आशा थी कि वह एक तीसरा भाग 'कोर्चागिन का सौभाग्य' के नाम से ("अवश्यमेव") लिखेगा (उसके जीवन की सुखमय घड़ियों की चर्चा पहले दो भागों में नहीं है)। उसने एक दूसरे उपन्यास 'तूफान के जाये' का प्रथम भाग लिखा जिसे वह अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पहले समाप्त कर पाया। इसके दो भाग और लिखकर वह इसे पूरा करना चाहता था। ("केवल किताब लिखने के लिए नहीं परन्तु इसे अपने हृदय की आग से प्रज्वलित करने के लिए।") एक फिल्म लेखक के साथ मिलकर उसने 'अग्नि-दीक्षा' की पटकथा लिखी। उसका विचार एक बच्चों की पुस्तक लिखने का भी था जिसका नाम वह 'पाव्का का बचपन' रखना चाहता था ("यह मुझे अवश्यमेव लिखना है"); इसके अतिरिक्त एक पुस्तक बुद्योन्नी के बारे में; एक संग्रह हास्यरस की कहानियों का। इसके अलावा लेख लिखना, युवा कम्युनिस्ट लीग तथा लेखक-सम्मेलनों में भाषण देना... अखबारों, पत्रिकाओं, पुस्तकों की रोजाना पढ़ाई... इसके कमरे में "मिलनेवालों का तांता" लगा रहता जिनमें लेखक, ऐक्टर, पुस्तकालयाध्यक्ष, प्रसिद्ध सामूहिक फार्मों के किसान, लेनिनग्राद के युवा कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, उसके अपने नगर शेपेतोव्का से आये हुए लोग इत्यादि होते। वह टेलीफोन पर बातें करता, रेडियो सुनता, अपने विभिन्न पत्रकारों की चिट्ठियों का जवाब देता। जब भी कभी उसे किसी की तनिक भी सहायता करने का अवसर मिलता तो उसे हार्दिक प्रसन्नता होती।

इन सब बातों से उसे जीवन में परिपूर्णता का भास होता था–यह सुखमय आभास कि मैं भी और लोगों की तरह काम कर रहा हूँ, सैन्य पंक्तियों में आगे बढ़ रहा हूँ।

वह जितने दिन जिया, बड़ा कर्तव्यपरायण रहा।

"मैं जानता हूँ कि मैं बहुत दिन नही जिऊँगा," उसने लिखा, "मेरे अन्दर एक आग है जो मुझे खाये जा रही है, और उसे नियन्त्रण में रखने के लिए मुझे अपनी समूची संकल्प-शक्ति को लगाने की जरूत रहती है। इस समय तो मैं ज्यों-त्यों ऐसा करने में समर्थ हूँ। मुझे इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाना है, जो प्रकृति ने मुझे सौंप रखा है, इसके चुक जाने से पहले मैं जो कुछ भी अपनी जनता के लिए लिख सकता हूँ, मुझे लिखना होगा। मेरे पास समय थोड़ा रह गया है... मुझे जल्दी करनी होगी।"

नवम्बर 1936 में ओस्त्रोव्स्की की नयी फस्तक 'तूफान के जाये' के पहले भाग की पाण्डुलिपि पर विचार करने के लिए मास्को में एक संयुक्त बैठक हुई। यह बैठक उसी के घर पर हुई और इसमें सोवियत लेखक संघ के अध्यक्षमण्डल तथा सोवियत संघ की लेनिनवादी युवा कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति ने भाग लिया। विचार-विनिमय के बाद ओस्त्रोव्स्की ने मैत्रीपूर्ण आलोचना के लिए सबको हार्दिक धन्यवाद दिया और वचन दिया कि एक दिन आराम करने के बाद ("मैं अपने को इतने भर विश्राम की इजाजत जरूर दूंगा") वह फिर इस किताब पर, प्रेस के लिए आखिरी पाण्डुलिपि तैयार करने के काम पर जुट जायेगा। वह किसी भी स्वस्थ आदमी के लिए पूरे तीन महीने का काम था; पर ओस्त्रोव्स्की ने उसे एक महीने में करने का निश्चय किया।

"मुझे रात को नींद नहीं आती," उसने कहा, "इससे भी मदद मिलेगी। कई लोग अपने रोग का इलाज आराम द्वारा करते है और कुछ लोग–काम के द्वारा।"

वास्तव में काम द्वारा ही उसने अपना 'इलाज' किया: सुबह नौ बजे से लेकर रात के दस, ग्यारह, कभी-कभी बारह बजे तक, काम करता, बीच में केवल थोड़ी-थोड़ी देर के लिए किसी-किसी वक़्त आराम कर लेता।

उसके परिवार के लोग बड़ी चिन्ता के साथ यह सब देख रहे थे। वह सचमुच अपनी बची-खुची शक्ति होम कर रहा था। उन्होंने इसकी मिन्नतें की कि थोड़ी मुद्दत के लिए काम स्थगित कर दो और आराम करो, पर वह विलम्ब की बात सुन तक न सकता था। बड़ी बेरहमी के साथ उसने अपने आपको जोते रखा और अपने सहायकों को भी, जिन्हें वह अपने "सदरमक़ाम के कर्मचारी" कहा करता था।

इसके बिस्तर के साथ एक मेज लगी रहती थी। उस पर तथा कुर्सियों और सोफे पर पाण्डुलिपियों की प्रतियाँ पड़ी होतीं, जिनपर इनके सम्पादकों ने अपनी टिप्पणियाँ लिखी होतीं। पन्ना-पन्ना करके काम आगे बढ़ रहा था। पहले लेखक की रचना का मूल पाठ किया जाता; फिर हर प्रति के एक-एक पन्ने पर दी गयी टिप्पणियों का।

अपने मन में एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य को तौलते हुए ओस्त्रोव्स्की कहीं शब्द बदलता, कहीं जोड़ता, कहीं काटता और इस तरह उपन्यास का आखिरी रूप तैयार होने लगा। एक बात स्थिर करने के बाद वह अपने सहायकों से और भी तेजी से काम करने का आग्रह करता : "लगे रहो, दोस्तो, लगे रहो!" यही उसकी एकमात्र माँग होती।

दिन पर दिन बीतते रहे। यह कड़ा श्रम जारी रहा। इसे स्थगित किया जाता तो केवल भोजन के लिए, अख़बारों और चिट्ठियों को पढ़ने के लिए, और प्रातः तथा सायं रेडियो पर ख़बरें सुनने के लिए।

आखिरी पन्ने का संशोधन 11 दिसम्बर को हुआ।

"'तूफान के जाये' के पहले भाग पर जो काम करना बाकी था आज मैंने उसे समाप्त कर दिया," उसने अपनी माँ को लिखा, "इस तरह मैंने अपना वचन पूरा कर दिया है जो लीग की केन्द्रीय समिति को दिया था कि मैं 15 दिसम्बर तक किताब ख़त्म कर दूँगा। पिछले सारे महीने में हर रोज 'तीन पाली' काम किया; अपने साथ काम करने वालों को बुरी तरह थका मारा। सुबह से लेकर गहरी रात गये तक उनसे काम लेता रहा, और बीच में कोई छुट्टी तक नहीं दी। बेचारी लड़कियाँ! न मालूम वे मेरे बारे में क्या सोचती होंगी। मैंने सचमुच उन पर बहुत जुल्म किया है। पर अब यह और नहीं होगा। मैं बयान नहीं कर सकता कि कितना थक गया हूँ, पर किताब खत्म हो गयी है।"

कुछ दिन आराम करने के बाद

ओस्त्रोव्स्की 'तूफ़ान के जाये' के दूसरे भाग पर काम करना चाहता था। उसकी एक फाइल में इसके लिए इकट्ठी की गयी ऐतिहासिक सामग्री के संक्षिप्त विवरण और कुछ एक पन्ने उपन्यास के भी लिखे हुए पड़े थे। उसे आशा थी कि वह उपन्यास को (भाग 2 और 3) अक्टूबर क्रान्ति की बीसवीं सालगिरह तक–यानी एक साल से भी कम समय में–लिख डालेगा।

पर वही पत्र जो उसने माँ को लिखा और जिसमें से ऊपर उद्धरण दिया गया है उसकी अन्तिम रचना थी।

15 दिसम्बर को बीमारी का एक और दौरा आया जो अन्तिम और घातक सिद्ध हुआ। जिस तरह वह दर्द से छटपटाया, वह किसी भी इन्सान के लिए असह्य होता। विवश होकर उसने मार्फिया का इंजेक्शन लेना स्वीकार किया।

पर उसने 'कोम्सोमोल्स्काया प्राव्दा' के दफ़्तर को टेलीफोन किया–

''क्या माड्रिड के मोर्चे पर साथी अब भी डटे हुए हैं?''

फ्रांको के फासिस्ट लश्कर स्पेन की राजधानी का घेरा डाले बैठे थे।

माड्रिड का मोर्चा अभी तक क़ायम था और ओस्त्रोव्स्की ने उल्लसित होकर कहा–

''ठीक है : तो मैं भी डटा रहूँगा!''

पर क्षण भर बाद, उदास-सी आवाज़ में बोला–

''पर इसकी संभावना नज़र नहीं आती।''

बीमारी का दौरा इतनी तीव्रता के साथ आया कि बरसों के कड़े परिश्रम से थकी-हारी दुर्बल देह इस हमले को सहन न कर सकी।

डाक्टरों की सब कोशिशें निष्फल रहीं। वे इस दौरे को रोक नहीं पाये। मौत बढ़ी चली आ रही थी।

ओस्त्रोव्स्की जिस साहस के साथ जिया उसी साहस के साथ उसने मौत का सामना किया।

एक दिन–21 दिसम्बर को–वह अपनी नर्स से पूछने लगा जो उसके कमरे में काम करती थी कि वह कितने बरस से नर्स का काम कर रही है।

''26 बरस से,'' उसने जवाब दिया।

''और इस दौरान में तुमने बड़े दुख और यातनाएँ देखी होंगी, तुम्हारा काम ही जो ऐसा है?''

''हाँ, बेशक, बहुत कुछ देखा है।''

''और अब मेरी बारी है, मैं भी तुम्हें बहुत खुशी नहीं पहुँचा पाऊँगा।''

बड़ी मुश्किल से नर्स अपने आँसू रोक पायी।

''तुम क्या कह रहे हो?'' आश्वासन देने का विफल प्रयास करती हुई वह बोली। ''तुम कुछ ही दिनों में ठीक हो जाओगे। मुझे पक्का विश्वास है। और तुम्हें स्वस्थ देखकर मुझे कितनी खुशी होगी।''

''नहीं, नहीं, मैं अपनी हालत अच्छी तरह जानता हूँ। मैं तुम्हें खुश नहीं कर पाऊँगा। पर अफसोस। मुझे अपना काम समाप्त करने के लिए केवल एक साल की और ज़रूरत थी। मैं कितना काम अधूरा छोड़े जा रहा हूँ। और मेरी लीग–वह मुझसे कितनी चीज़ों की आशा करती है।''

उसी रात, जब उसकी पत्नी उसके सिरहाने बैठी थी, वह कहने लगा–

''प्यारी राया, मेरी तबियत बिगड़ती जा रही है। मुझे बहुत दर्द है। डाक्टर मुझे सच-सच नहीं बताते। मुझे लगता है कि यह दौरा मुझे लेकर रहेगा।''

थोड़ी देर तक वह चुपचाप लेटा रहा। केवल उसकी भवें तनी हुई थीं, जैसे वह पीड़ा को दबाने की चेष्टा कर रहा हो।

''जो कुछ मैं तुम्हें कह रहा हूँ, इसे तुम मेरे आखिरी वाक्य समझो। हो सकता है मैं इसके बाद अपनी चेतना खो बैठूँ। मैंने बुरा जीवन नहीं बिताया। मैं जो कुछ हूँ अपना बनाया हुआ हूँ। कुछ भी आसान न था, कोई भी बात अपने आप सीधी नहीं हुई। मैं सदा संघर्ष करता रहा और–तुम तो जानती हो– मैंने कभी हार नहीं मानी। और अब मैं तुम्हें यही बताना चाहता हूँ कि यदि कभी जीवन तुम्हारे लिए कठिन हो उठे तो मुझे याद कर लेना। एक और बात। जहाँ भी तुम हो, जिस काम में भी लगी हो, पढ़ना और सीखना जारी रखना। इसे कभी नहीं छोड़ना। अध्ययन के बिना कभी कोई उन्नति नहीं कर सकता। और हमारी माताओं को नहीं भूलना। जीवन भर उन्हें हमारी चिन्ता रही है। मुझे उन पर दया आती है। हम उनके कितने ऋणी हैं। कितने ऋणी हैं! हमने उनके लिए क्या किया है? उनका ख्याल रखना। उन्हें कभी नहीं भूलना।''

22 दिसम्बर 1936 को ओस्त्रोव्स्की की मृत्यु हुई। उस समय उसकी अवस्था केवल 32 वर्ष की थी।

ऐसा था उस अद्‌भुत वीर का अन्त –जिसके जीवन की आखिरी साँस भी कम्युनिज़्म के महान लक्ष्य के लिए निछावर हुई। कैसा साहसपूर्ण, उन्मत्त और सौन्दर्य से भरा उसका जीवन था!

पर ऐसे मनुष्य कब मरते हैं?

मौत ने उसके हाथ से उस वक्त क़लम छीन ली जब वह अपने रचनात्मक श्रम के शिखर पर था। पर उसकी अनुपम रचनाएँ हमारे पास हैं, उसके सत्य से अनुप्राणित वाक्य, उसके जीवन का उत्कृष्ट आदर्श– कितना संक्षिप्त, पर कितना महान!